Emerging Trends in Education [ Vol. 2 - No. 2 . pp 82-89 ]

# शिक्षा का अधिकार कानून : कल्पना और यथार्थ

प्रो0 कल्पलता पाण्डेय*

किसी भी समाज के निर्माण की आधारशिला शिक्षा है। कोई भी राष्ट्र यदि सद्पुरुषों एवं देशभक्त सद्नागरिकों से युक्त समाज चाहता है तो उसके नीतिकारों के लिए दीर्घकालीन उद्देश्यों से युक्त शिक्षा की योजना बनाना अपरिहार्य है।

हम जानते है कि यदि शिक्षा के उद्देश्यों को सही ढंग से पूरा किया जाय तो एक प्रबुद्ध समाज की स्थापना की जा सकती है। इसलिए किसी भी राज्य अथवा देश के नीति नियन्ताओं का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कर्त्तव्य यह है कि वह देश के प्रत्येक नागरिक के लिए सरल, सौद्देश्यपूर्ण एवं सुलभ शिक्षा की व्यवस्था सुनिश्चित कराये। इस कर्त्तव्य के प्रति जागरूकता सदा से ही भारत में रही है। परिणाम स्वरूप बीसवीं शदी के प्रारम्भ से ही इस दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास किये जाने लगे थे। सन् 1906 में बड़ौदा में तत्कालीन राजा सैया जी राव गायकवाड़ ने अपने राज्य में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य एवं निःशुल्क बनाने की पहल की। उसके बाद श्री गोपाल कृष्ण गोखले जी ने इस सम्बन्ध में केन्द्रीय धारा सभा में सन् 1911 में अपना महत्वपूर्ण विधेयक प्रस्तुत किया। यह प्रयास स्वतन्त्रता के उपरान्त भी चलता रहा। स्वतन्त्रता के उपरान्त प्राथमिक शिक्षा के विकास के लिए गठित किये गये प्राथमिक शिक्षा आयोग (शिक्षा और राष्ट्रीय विकास) के छठें अध्याय में मूर्धन्य शिक्षाविद् श्री दौलत सिंह कोठारी द्वारा की गई निम्नांकित सिफारिश इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण है:

"....इसलिए हम यह सिफारिश करते हैं कि देश क्रमशः उस व्यवस्था की ओर बढ़े जिसमें सारी शिक्षा निःशुल्क होगी.....भारत के संविधान में उपबन्ध है कि 14 वर्ष तक के आयु के सब बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा दी जाये। इस निदेशक का अनिवार्य वाला अंश लागू होने में लगभग 20 वर्ष लग जायेंगे। इसलिए हम सिफारिश करते हैं कि प्राथमिक स्तर पर पढ़ाई की सब फीसें यथाशीघ्र, और अधिक अच्छा हो, चौथी पंचवर्षीय योजना की समाप्ति के पहले ही हटा दी जायें। इसका मतलब यह हुआ कि सरकारी, स्थानीय प्राधिकरणों के और सहायता प्राप्त निजी स्कूलों में पढ़ाई की कोई फीस न रहे और निजी स्कूलों में दिये जाने वाले सहायक अनुदानों में उपयुक्त वृद्धि कर दी जाये..... ।"

प्राथमिक स्तर पर अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा का सुझाव नई शिक्षा नीति (1986) एवं उसके बाद गठित समितियों द्वारा भी दिया गया। इन्हीं प्रयासों को अमली जामा पहनाने के लिए 4 अगस्त, 2009 को यह कानून संसद में पारित किया गया एवं बाल अधिकार के संरक्षण के लिए

* आचार्य एवं संकायाध्यक्ष, शिक्षा संकाय, महात्मागांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

बनाये गये राष्ट्रीय आयोग (एन0सी0पी0सी0आर0) को इस कानून को लागू करने हेतु संचालन का दायित्व दिया गया तथा इस आयोग के अन्तर्गत एक विशेष संभाग इस कानून के कार्यान्वयन पर विशेष दृष्टि रखने के लिए निर्धारित किया गया। यह कानून भारतीय संविधान की धारा 21क के अन्तर्गत लागू किया गया है। 1 अप्रैल, 2010 को शिक्षा के अधिकार कानून के लागू हो जाने के बाद भारत उन 135 देशों में सम्मिलित हो गया है जो शिक्षा को मौलिक अधिकार के रूप में देखते हैं। साथ ही यह कानून विश्व का पहला ऐसा विधान है जिसके द्वारा सरकार को विद्यार्थियों के पंजीकरण, उपस्थिति एवं शिक्षा का पूरा दायित्व दिया गया है। अमेरिका और अन्य दूसरे देशों में यह जिम्मेदारी माता–पिता एवं अभिभावकों की है कि वे पाल्यों को शिक्षा प्राप्त करने हेतु विद्यालयों में भेजें। भारत में भी सन् 1976 में संविधान में 10 मौलिक कर्त्तव्यों को जोड़ा गया एवं बाद में सन् 2001 के भाग 4अ के 86वें संशोधन अधिनियम में इसमें एक और कर्त्तव्य जोड़ा गया जिसके अन्तर्गत यह कहा गया कि प्रत्येक माता–पिता एवं अभिभावक को अपने 6–14 वर्ष के आयुवर्ग के बच्चों एवं पाल्यों को शिक्षा का अवसर प्रदान करना होगा। **शिक्षा के अधिकार कानून** पर विचार करने के पूर्व इस कानून के प्रमुख बिन्दुओं को निम्नवत् उल्लिखित करना समीचीन होगा:

- 6 से 14 वर्ष के बालकों/बालिकाओं के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था तथा इनके लिए पुस्तकें, विद्यालय परिधान एवं अन्य वस्तुओं की निःशुल्क व्यवस्था।
- कोई भी बालक/बालिका एक शैक्षणिक सत्र में कभी भी प्रवेश ले सकता है।
- प्रत्येक सरकारी, अनुदानित एवं अन्य विद्यालयों से वंचित विद्यार्थियों के लिए 25 प्रतिशत सीट आरक्षित रहेगी। इन स्थानों पर सामान्य यादृच्छिक चयन के आधार पर वंचितों को प्रवेश दिया जायेगा। इनके फीस की भरपाई सरकारी विद्यालयों में प्रति छात्र लागत के आधार पर विद्यालयों को दी जायेगी।
- विद्यालयों में अध्यापकों के चयन में गुणवत्ता को ध्यान में रखते हुए कड़ी चयन प्रक्रिया का अनुपालन होगा।
- एक कक्षा में विद्यार्थी एवं अध्यापक का अनुपात 30 : 1 का होगा।
- प्राथमिक विद्यालयों में आधारभूत सुविधाओं एवं भौतिक सुविधाओं को पूरा करना अनिवार्य होगा। ऐसे विद्यालय जो इन आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करते हैं उनकी मान्यता निर्धारित अवधि के बाद समाप्त कर दी जायेगी।
- प्रत्येक बालक/बालिका के घर से 1 किमी. की दूरी के अंदर प्राथमिक विद्यालय एवं कक्षा 6 से 8 में पढ़ने वाले बालक/बालिकाओं के लिए प्रत्येक 3 किमी. पर एक विद्यालय की अनिवार्यतः व्यवस्था की जायेगी।

- उच्च प्राथमिक स्तर के किसी भी विद्यार्थी के लिए किसी भी बोर्ड की परीक्षा उत्तीर्ण करना अनिवार्य नही होगा, न उन्हें किसी कक्षा में रोका जा सकता है और न ही उन्हें विद्यालय से सामान्यतया निकाला ही जा सकता है।

- विशिष्ट बालक भी उसी कक्षा में सामान्य बालकों के साथ उन्हीं की तरह अध्ययन करेंगे।

- ऐसे विद्यार्थी जो किन्हीं करणों से शिक्षा से वंचित हैं अथवा विद्यालय छोड़ चुके हैं उनके लिए विशेष प्रशिक्षण का प्रावधान होगा जिससे कि वे भी अपनी आयु के बालकों के समान योग्यता अर्जित कर सकें।

- प्रत्येक विद्यालय को शिक्षा का अधिकार कानून में दिये गये मानकों को 3 वर्षों के अन्दर पूरा करना होगा। यदि वे ऐसा नहीं करते हैं तो उन्हें 1 लाख रूपये जुर्माना और यदि निर्धारित अवधि के आगे भी ऐसा करते रहे तो 10000/– प्रतिदिन अर्थदण्ड देना होगा। प्रत्येक गैर सरकारी विद्यालय को मान्यता/सम्बद्धता के लिए नये सिरे से आवेदन करना होगा।

- गैर सरकारी विद्यालयों में किसी भी प्रकार का अन्य शुल्क नहीं लिया जायेगा।

- अध्यापकों के लिए भी गुणवत्ता से आच्छादित निर्धारित मानकों को प्रत्येक स्थिति में पाँच वर्षों में पूरा करना अनिवार्य होगा।

- गैर सरकारी और गैर अनुदानित विद्यालयों को छोड़कर सभी विद्यालयों में विद्यालय प्रबन्धन समिति बनायी जायेगी जिसके 75 प्रतिशत सदस्य अभिभावक अथवा माता–पिता होंगे।

उपर्युक्त वर्णित कुछ प्रमुख बिन्दुओं के आधार पर यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण की दिशा में कई दशकों से चलाए जा रहे अभियान विशेष रूप से 21वीं सदी के प्रथम दशक में किये जा रहें प्रयासों को इस कानून के द्वारा एक सशक्त आधार प्राप्त हुआ है। यह इस देश का सौभाग्य है कि यहाँ कल्पनाओं की उड़ान भरने और उसपर आधारित चमत्कृत रूप से आशाओं का संचार करने वाली योजनाएँ बनाने में कभी कृपणता नहीं बरती गयी जिसका परिणाम है हमारे समक्ष स्वतन्त्रता के उपरान्त गठित किये गये तीनों आयोगों एवं विभिन्न समितियों के प्रतिवेदन एवं सुझाव। यदि इनके द्वारा दिये गये सुझावों का 25 प्रतिशत भी अमल में लाया गया होता तो देश की शैक्षिक स्थिति एकदम भिन्न होती। 'शिक्षा का अधिकार' कानून योजना बनाने की दृष्टि से अत्यन्त आकर्षक प्रतीत होता है किन्तु

इसके कार्यान्वयन पक्ष पर जब दृष्टि डालते हैं तो कई शंकाएँ उठ खड़ी होती हैं जिसमें से कुछ विचारणीय बिन्दु निम्नवत् है:

- यह कानून अदा (input) पर अधिक केन्द्रित है। इसमें कार्यान्वयन पक्ष और उसमें आने वाली बाधाओं आदि पर कम विचार किया गया है।
- इस कानून में गैर सरकारी, गैर अनुदानित विद्यालयों पर अध्यापकों की नियुक्ति, उनके वेतन अथवा विद्यालयों में उपलब्ध भौतिक सुविधाओं के संदर्भ में अधिक कठोरता से शिकंजा कसा गया है और उन्हें उपर्युक्त में से किसी भी मानक में खरा न उतरने पर निर्धारित अवधि के बाद अर्थदण्ड लगाने की बात कही गई है जबकि ऐसे कई शोधों से प्राप्त परिणाम यह बताते हैं कि ये विद्यालय यदि उपर्युक्त विद्यालयों से अच्छें नहीं भी हैं तो उनके समकक्ष अवश्य हैं। सामान्य जन का भी झुकाव इन्हीं विद्यालयों की तरफ अधिक होता है क्योंकि इन विद्यालयों में गुणवत्ता स्थापित करना अपरिहार्य है। यह कानून मानक पर खरे नहीं उतरने वाले विद्यालयों को बंद करने की बात कहता है जबकि होना यह चाहिए कि उनकी वित्तीय मदद के लिए किसी प्रकार का रास्ता निकाला जाना चाहिए क्योंकि ऐसे विद्यालयों की एक बहुत बड़ी संख्या है और ये प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।
- सरकारी एवं अनुदानित विद्यालयों में विद्यालय प्रबन्धन समिति का गठन स्वागत योग्य है किन्तु इस समिति में सम्मिलित 75 प्रतिशत अभिभावक/माता–पिता के चयन का आधार क्या है यह भी निर्धारित किया जाना आवश्यक था। कई विद्यालयों के प्रबन्धन समिति में वे ही अभिभावक/माता–पिता सम्मिलित हो जाते हैं जो किसी न किसी प्रकार से जैसे– मिड डे मील, विद्यालयों की विभिन्न वस्तुओं जैसे परिधान, पुस्तकों आदि के सप्लायर के रूप में या अन्य किसी तरह से विद्यालय से जुड़े होते हैं। इनसे विद्यालय के विषय में ऐसे सुझावों की अपेक्षा नहीं की जा सकती जिससे प्रबन्धतंत्र को असुविधा हो। साथ ही वि0प्र0स0 को जो अधिकार प्रदत्त हैं उसमें विद्यालय की शैक्षणिक गुणवत्ता, अध्यापकों की गुणवत्ता, उसपर टिप्पणी करने, उसमें सुधार करने हेतु कड़े कदम उठाने आदि की स्वतन्त्रता नहीं है। यदि अध्यापकों की गुणवत्ता, उनकी नियुक्ति, उनके विषय में निर्णय लेने के अधिकार में वि0प्र0स0 को भी सम्मिलित किया जाता तो यह शैक्षणिक गुणवत्ता सम्वर्द्धन के संदर्भ में अधिक महत्वपूर्ण होता। साथ ही विद्यार्थियों के अध्ययन एवं उनके मूल्यांकन में भी वि0प्र0स0 को अधिक अधिकार दिये जाने चाहिए थे।
- इस कानून में विद्यालयों में अध्यापकों के वेतन को न्यूनतम 20000/– प्रतिमाह

निर्धारित करने की बात भी कही गई है। यह भी प्रत्येक विद्यालय के लिए बिना सरकारी सहायता के सम्भव नहीं है। जहाँ तक अध्यापकों का प्रश्न है हम सब जानते हैं सरकारी विद्यालयों में अथवा अनुदानित विद्यालयों में इनकी कार्यप्रणाली एवं कार्यकुशलता किस प्रकार दिखाई देती है। लगभग 25 प्रतिशत ऐसे अध्यापक हैं जो या तो विद्यालय से अनुपस्थित रहते है या विद्यालय आने के बाद भी कक्षा में नहीं जाते हैं। ऐसी स्थिति में वेतन के समान निर्धारण से ऐसे अध्यापकों एंव अपने कार्यों को सुचारू रूप से निष्पादित करने वाले अध्यापकों में किसी प्रकार का अंतर नहीं रह जायेगा।

- इस कानून में वंचित बालकों के लिए गैर सरकारी विद्यालयों में 25 प्रतिशत आरक्षण की बात कही गई है किन्तु इस 25 प्रतिशत का निर्धारण कैसे होगा इसपर कानून में कुछ स्पष्टता से नहीं कहा गया है। अभावग्रस्त एवं कमजोर वर्गों के बालकों का निर्धारण कैसे होगा। सरकार द्वारा इन्हें चुने जाने का मानक क्या होगा। इस सारी प्रक्रिया में सरकार पारदर्शिता कैसे ला सकेगी। अगर बच्चे उच्च कक्षाओं में विद्यालय बदलना चाहें तो उसके लिए क्या प्रक्रिया होगी। नवोदय विद्यालयों की वर्तमान में जो स्थिति इस संदर्भ में है वह किसी से भी छिपी नहीं है। ऐसी स्थिति में इस विचार में निहित शुचिता के प्रति कितना न्याय होगा यह नहीं कहा जा सकता है। साथ ही शुल्क में जो क्षतिपूर्ति विद्यालयों को दी जायेगी उसे प्रदान करने की व्यवस्था किस प्रकार होगी यह भी बहुत स्पष्ट नहीं है। उपर्युक्त सभी बिन्दु विचारणीय हैं और इनपर निर्णय लिया जाना आवश्यक है किन्तु इसपर निर्णय लेते समय कल्पना की आकाशचुम्बी उड़ान से यथार्थ के धरातल पर स्थिरता से खड़े होने की आवश्यकता है। गुणवत्ता की दृष्टि से वर्तमान शैक्षिक स्थिति का एक छोटा सा आकलन निम्नवत् है:

- एक समाचार पत्र दैनिक हिन्दुस्तान में यह प्रकाशित किया गया कि केन्द्र सरकार ने बिना तैयारी के दो साल पूर्व शिक्षा का अधिकार कानून लागू किया, अब गिर रहा है शुरूआती पढ़ाई का स्तर। इस समाचार का शीर्षक है– अनट्रेन्ड टीचरों के हवाले है देश के नौनिहालों का भविष्य। इसमें लिखा गया है कि प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी के चलते आने वाले दिनों में प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता और गिर सकती है। देश में पहले से ही साढ़े सात लाख अप्रशिक्षित शिक्षक कार्य कर रहे हैं। इसकी अनदेखी करते हुए केन्द्र सरकार ने सात और राज्यों को अप्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति की इजाजत दे दी है। बिहार, पश्चिम बंगाल, मध्यप्रदेश, ओड़िसा, छत्तीसगढ़, असम और मणिपुर को यह अनुमति मिली है। बिहार में 1 लाख 61 हजार से अधिक, उत्तर प्रदेश में 1 लाख 18 हजार, असम में 91 हजार, पश्चिम बंगाल में 82 हजार, छत्तीसगढ़ में 40 हजार, मध्यप्रदेश में 21 हजार, ओड़िसा में 18 हजार, मणिपुर में 65 हजार अध्यापक अप्रशिक्षित

हैं। वर्तमान समय में कुल 38 लाख 30 हजार शिक्षक प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत हैं जिसमें से 32 लाख 90 हजार स्थायी और 5 लाख 40 हजार अस्थायी शिक्षक हैं। इनमें से 7 लाख 66 हजार कुल अशिक्षित शिक्षकों की संख्या है। असर रिपोर्ट के अनुसार शिक्षा के गिरते स्तर के लिए शिक्षकों की कमी और गुणवत्ता के अहम कारण, सरकारी स्कूलों की खराब गुणवत्ता से निजी स्कूलों में बढ़ा दाखिले का प्रतिशत, उत्तर भारत में पाँचवी के 48 फीसदी बच्चों द्वारा कक्षा दो की किताबों को नहीं पढ़ पाना, तीसरी कक्षा के तकरीबन 30 फीसदी बच्चों द्वारा 2 अंकों का जोड़–भाग नहीं कर पाना, सरकारी स्कूलों में कक्षा तीन में पढ़ने वाले 56 प्रतिशत बच्चों द्वारा हिन्दी के पाठों को भी ठीक से न पढ़ पाना, कक्षा तीन के 51 प्रतिशत बच्चों द्वारा 1 से 100 तक गिनती न गिन पाना आदि माना गया है।

- कुछ राज्यों द्वारा इस कानून को स्वीकार करने में वित्तीय अड़चनों की बात भी कही गयी है। इस समस्या को हल करने के लिए केन्द्र सरकार द्वारा एक समिति का गठन किया गया जिसके द्वारा आरम्भ में आने वाले पाँच वर्षों में इस कानून को लागू करने के लिए होने वाले व्यय का आकलन 171 हजार करोड़ रूपये किया। इसमें केन्द्र और राज्य का व्यय प्रतिशत क्रमशः 65 : 35 रखा गया और उत्तरी राज्यों के लिए यह प्रतिशत 90 : 10 का माना गया। सन् 2010 के मध्य में यह राशि बढ़कर 231 हजार करोड़ हो गयी और केन्द्र ने इसमें 68 प्रतिशत तक की हिस्सेदारी को मान लिया। इसे वर्तमान में केन्द्र की 70 प्रतिशत तक की हिस्सेदारी के रूप में लागू किया जा रहा है।

इस यथार्थ को ध्यान में रखते हुए इस कानून के प्रभावी क्रियान्वयन हेतु कुछ सुझाव निम्नवत् प्रस्तुत है :

- अध्यापकों की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए विद्यालय प्रबन्धन समिति को वैधानिक अधिकार दिये जायें। जहाँ अध्यापक समय से नहीं आते हैं अथवा कक्षा में नहीं जाते हैं वहाँ पर अनुशासनात्मक कार्यवाही की जिम्मेदारी वि0प्र0स0 की हो और उसमे वहीं अभिभावक सदस्य हो जो किसी भी अन्य प्रकार से विद्यालय से सम्बन्धित न हों।

- वंचितों एवं अभावग्रस्त वर्गों के बालकों के लिए आरक्षित 25 प्रतिशत स्थानों पर चयन की प्रक्रिया को और स्पष्ट एवं व्यावहारिक बनाया जाये। इसी प्रकार शुल्क की क्षतिपूर्ति के लिए भी स्पष्ट निर्देश हो।

- अप्रशिक्षित अध्यापकों की समस्या के लिए शिक्षक–प्रशिक्षण संस्थानों की मदद ली जाय तथा वहाँ पर अतिरिक्त पालियों में अथवा ग्रीष्मकालीन कक्षाएँ चलाकर विशेष

प्रशिक्षण दिया जाय। प्रशिक्षण देते समय इस कानून में उल्लिखित तत्सम्बन्धित आवश्यकताओं को भी संज्ञान में लिया जाये।

- ऐसे गैर सरकारी विद्यालय जिनके पास इस कानून के निर्देश के अनुरूप सुविधाएँ नहीं है उन्हें किसी भी प्रकार से आर्थिक मदद मुहैया कराई जाये ताकि इन्हें अपने स्तर को मानक के अनुरूप बनाने में मदद मिल सके।

- विद्यालय के स्तरों के निर्धारण के लिए एक वस्तुनिष्ठ एवं उपयुक्त व्यवस्था अपनाई जाये। उच्चस्तरीय विद्यालयों को यह निर्देश दिया जाय कि वे अपने आस–पास के विद्यालयों के स्तर को उच्चीकृत करने में अपेक्षित सहायता प्रदान करें।

- इस कानून के प्रति आम नागरिकों में जागरूकता बढ़ाने के लिए सरकार द्वारा सार्थक प्रयास किये जायें। साथ ही कमजोर वर्गों को भी उनके बालकों के लिए आरक्षित स्थानों के प्रति सजग किया जाये ताकि वे इन सुविधाओं का लाभ ले सकें।

- सरकारी विद्यालयों में भी सुधार अपेक्षित हैं। उन्हें ऐसा बनाया जाय कि वे वास्तव में गैर सरकारी विद्यालयों के लिए अनुकरणीय हो सकें।

- निजी संगठनों को भी इस दिशा में कार्य करने के लिए प्रेरित किया जाये। इसके लिए एक ऐसा वातावरण सरकार द्वारा तैयार किया जाये कि वे बिना किसी कदाचार में उलझे इस महान यज्ञ में अपनी भागीदारी प्रसन्नता से कर सकें।

- यह सत्य है कि प्रशिक्षित अध्यापकों और पड़ोसी विद्यालयों की कमी से सरकार जूझ रही है। वर्तमान में लगभग 92 लाख बच्चे या तो विद्यालय गये ही नही हैं या विद्यालयों को छोड़ चुके हैं। इनके लिए भी सुविचारित दीर्घ कालीन योजनाएँ बनाई जायें।

- यू0एन0 चाइल्ड राइट कन्वेंशन में भारत ने बालकों की आयु से सम्बन्धित इस अन्तर्राष्ट्रीय परिभाषा को स्वीकार किया है ''कोई भी जो 18 वर्ष से कम आयु का है, वह बालक की श्रेणी में है''। 'शिक्षा का अधिकार' कानून केवल 6–14 वर्षों के बीच के बालकों को शिक्षा का अधिकार देने की बात कहता है। इस दृष्टि से 0–6 एवं 14–18 आयु वर्ग के बालक शिक्षा के अधिकार से वंचित हो जा रहे हैं। यह समस्या संविधान के 86वें संशोधन एवं इसकी धारा 21क से है जो आयु को परिभाषित करता है। इसमें संशोधन करके इसे 6–14 वर्ष के स्थान पर 0–18 वर्ष तक विस्तारित किया जाये जिससे ऐसे बालकों को भी शिक्षा का अधिकार मिले जो इस आयु वर्ग में न आ पाने के कारण उससे वंचित हैं।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह स्पष्ट अनुभव किया जा सकता है कि इस अत्यन्त महत्वपूर्ण कानून के प्रति नीति नियंताओं एवं विचारकों का प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण एवं गुणवत्ता पूर्व शिक्षा देने के प्रति कितना प्रबल आग्रह अन्तर्निहित था। जैसा कि पूर्व में भी कहा गया है, स्वतन्त्रता के पूर्व औपनिवेशिक काल में अथवा स्वतन्त्रता के पश्चात् स्वतन्त्र भारत के शैक्षिक पुनरूत्थान के लिए जितने भी आयोग एवं समितियाँ बनाई गई, उनके सुझावों में राष्ट्र के निर्माण की चिन्ता स्पष्टतः परिलक्षित होती है किन्तु कल्पना की उड़ान अथवा इस महती उद्देश्य को पूरा करने की त्वरित इच्छा में क्रियान्वयन के प्रति जो यथार्थ के धरातल पर रहकर गम्भीर नियोजन होना चाहिए था, वह किन्हीं कारणों से नहीं हो सका। अधिक दूर न जाकर यदि केवल शिक्षा आयोग (1964–66) में दिये गये सुझावों पर ही अमल कर लिया गया होता तो राष्ट्र में निःशुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के स्वप्न को पूरा करने में कई पंचवर्षीय योजानाओं का समय न लग जाता। भय इस बात का है कि जैसे अधिकांशतः आयोगों एवं समितियों द्वारा की गई महत्वपूर्ण अनुशंसाओं को पूरी तरह क्रियान्वित नहीं किया जा सका वैसा ही कहीं इस महत्वाकांक्षी कानून के साथ न हो।

इसके लिए सरकार एवं जन साधारण दोनों को पूरे उत्साह के साथ इस महनीय कार्य में लगना होगा क्योंकि भारत एक युवा देश है और युवा शक्ति को यदि लक्ष्योन्मुख एवं स्वर्णिम भारत के स्वप्न को साकार करने की प्रबल इच्छा शक्ति से युक्त बनाना है तो गुणवत्तापरक शिक्षा से उन्हें अवश्य ही सुसज्जित करना होगा। तभी यह कानून सार्थकता के साथ अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकेगा।

## संदर्भ ग्रन्थ


1. कोठारी, दौलत सिंह (1966): शिक्षा आयोग का प्रतिवेदन (शिक्षा और राष्ट्रीय विकास), भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय, प्रकाशन सं0 825, प्रथम संस्करण, 1968, 126–127।
2. सिंह, आर0जे0, सावन्त, राखी, गुलाटी निधि (2011): शिक्षा का अधिकार, कानून–एक समीक्षा, इमर्जिंग ट्रेन्ड्स इन एजुकेशन, एसोसियेशन फॉर एन्नोवेटिव एजुकेशन, वाल्यूम–1, नम्बर–2, फरवरी, 44–51।
3. जैड़ा मदन (2010): दैनिक हिन्दुस्तान, वाराणसी, असर रिपोर्ट।